उपसंहार

आदिपुराण दिगम्बर जैन प्रथमानुयोग का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। आदिपुराण में बने हुये चित्र जैन दिगम्बर सम्प्रदाय के अमूल्य धरोहर है। अनेक ग्रन्थों में स्थान–स्थान पर अनेक कारणों से पाण्डुलिपियों के सम्यक् संरक्षण के अभाव में उनके लुप्त होने विदेशियों द्वारा भारत के बाहर ले जाने एवं उनके जर्जर हो जाने का उल्लेख किया है और इसका उल्लेख करते–करते मन की व्यथा को व्यक्त भी किया गया है। जो न केवल उनकी अपितु आज जैन समाज के प्रत्येक व्यक्ति के मन की व्यथा है।

प्रस्तुत कथानक पर आधारित आदिपुराण 14वीं शताब्दी से 16वीं शती तक 300 वर्ष की अवधि तक अनेक जैनाचार्यों और अन्य लेखकों द्वारा यह रचना अनेक रूपों में तथा विविध भाषाओं में निर्मित अनुदित होती रही है सहज व सरस, आकर्षक कथानक प्रस्तुत करने हेतु मूलपाठ के साथ–साथ चित्र भी अंकित हुये हैं।

अंकित चित्र मात्र इन पाण्डुलिपियों का ही प्रतिनिधित्व नहीं करते, अपितु शैलीगत आधार पर अवलोकन करने पर प्रतीत होता है कि जिन चित्रकारों द्वारा ये चित्र अंकित किये गये वे किसी सम्प्रदाय विशेष से ही सम्बन्धित नहीं थे। उन्होंने 'आदिपुराण' के अतिरिक्त अन्य पुस्तक–ग्रन्थों (पाण्डुलिपियों) में भी, चाहे वे धार्मिक हो या सांसारिक चित्रण किया है। क्योंकि उन पाण्डुलिपियों में भी समान चित्रण–विधि अपनाई गयी है। ये चित्र शैलीगत आधार पर 15वीं शती से 18वीं शती तक के समय की चित्र शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं इस अवधि में चित्रकला किन–किन श्रोतों से अंकुरित होकर धारारूप प्रवाहित होती हुयी पराभव–काल तक किन रूपों में प्रवर्तित होती रही ये तथ्य इन चित्रों के माध्यम से उजागर होते हैं।

15वीं शती का समय ऐसा था जबकि ताड़पत्रीय ग्रन्थों के स्थान पर कागजीय ग्रन्थों पर चित्र निर्माण का कार्य निर्बाध गति से चल रहा था। इस समय के चित्र गुजराती या पश्चिमी भारतीय चित्र–शैली में अंकित किये गये हैं जिनकी मुख्य विशेषता आकृतियों में सर्वत्र कोणीयता, हाथों व पैरों, मुख आदि मुद्राओं में जकड़न विशेष तथा मानवाकृतियों के अंकन में खाली जगह से निकली परली आँख का चित्रण आदि है, जो आदिपुराण की आरंभिक पाण्डुलिपियों में दृष्टिगोचर

होता है। तत्पश्चात् गुजराती शैली के उत्तरकाल अर्थातृ 16वीं शती में मुगल कलम से जुड़ जाने पर चित्रों में परिवर्तन दिखायी देने लगा। वेशभूषा के अन्तर्गत पुरुषाकृतियों को धोतियों के स्थान पर पायजामा, जामा, पटका धारण किये हुये तथा स्त्री आकृतियों को पारदर्शी चुनरी धारण किये हुये चित्रित किया गया है। इसके अतिरिक्त चित्रों में प्रयोग होने वाली परली आँख का अभाव हो जाने के कारण चित्रों में कुछ परिवर्तन हुआ तथापि भावहीन आकृतियाँ व उनमें जकड़न कायम थी जो कि जिनसेनाचार्य रचित आदिपुराण के चित्रों में मिलती है। इस ग्रन्थ के चित्र पश्चिम–भारतीय या अपभ्रंश शैली के उदय, विकास एवं पराभव के सहवर्ती होने के कारण इस शैली के प्रवाह को भली–भाँति व्यक्त करते हैं। इस समय का चित्रांकन आरंम्भिक चित्रांकन था जो आगे चलकर मुगल एवं पहाड़ी आदि चित्र शैलियों से संयुक्त होकर लालित्यपूर्ण होता चला गया।

आदिपुराण के चित्र न ही पूर्णतः अपभ्रंश शैली न ही पूर्णतः गुजराती शैली से सम्बन्धित है। इन चित्रों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानवाकृतियों की वेशभूषा एवं आकृति मुगल व चौरपंचाशिखा ग्रन्थ से समानता रखती हैं। अतः इन चित्रों के अध्ययन से निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि ये चित्र (माड़वाड़ शैली) 1000ई. से 1500 ई. तक के निकट चित्रित चित्रों से समानता रखते है जिसके अन्तर्गत जैन धर्म के अधिक से अधिक ग्रन्थों को चित्रित किया गया आदिपुराण की सचित्र पाण्डुलिपियाँ 15वीं शती से 18वीं शती तक की भारतीय चित्रकला के इतिहास परिचायिक है ये चित्र अपभ्रंश, मुगल व राजस्थानी चित्र–शैली के विकास में पूर्ण सहयोग प्रदान करते हैं अतः कुछ ऐसे तथ्य भी सामने आये हैं जो अपभ्रंश मुगल व राजस्थानी चित्र–शैलियों से अवगत होने में सहायक सिद्ध होते हैं इसके अतिरिक्त उक्त चित्र जैन ग्रन्थों से सम्बन्धित होने के कारण जैन पाण्डुलिपियों के विकास की विछिन्न श्रृंखला की पूर्ति करने में सक्षम है, क्योंकि बंगाल में प्रचलित पाल शैली के पश्चात् अकबर के समय तक की विभिन्न पाण्डुलिपियाँ विद्वानों द्वारा निरन्तर प्रकाश में लायी जाती रही है, किन्तु अकबर के समय से अब तक की सचित्र जैन पाण्डुलिपयों का भाग प्रायः लुप्तावस्था में है आदिपुराण ग्रन्थ के चित्र व इनकी प्रतियाँ मुख्यतः इसी समय की जैन चित्रकला के इतिहास को प्रस्तुत करने में आधारभूत है। आदिपुराण के सभी चित्र न केवल चित्रविषयक परिज्ञान कराने में सफल है बल्कि तत्कालीन

संस्कृति की ओर इंगित करते हैं कि उस समय के व्यक्तियों का रूचि–रूझान क्या था, कैसी मनोवृत्ति थी, चित्रों में अंकित वेशभूषा, आभूषणों का प्रयोग तद्युगीन व्यक्तियों की मनोवृत्ति व उनके आचार–व्यवहार को इंगित करते है। इसके साथ ही वह उनके सौन्दर्यात्मक ज्ञान की संकीर्णता को भी अभिव्यक्त करते हैं।

यह सन्तोष की बात है कि जैन परम्परा ने ग्रन्थ–लेखन पर विशेष बल दिया। ग्रन्थ लिखना, लिखवाना, प्रतिलिपियाँ बनवाना तथा उन्हें पाठकों को उपहार–स्वरूप देना पुण्यदायी माना गया है, पुष्पदंत के आदिपुराण (महापुराण) की प्रशस्ति का जिसमें कहा गया है कि भरत एवं नन्न के राजमहलों में साहित्यकारों के साथ–साथ प्रतिलिपिकार भी प्रतिलिपियों का कार्य करते थे यही कारण था कि अतिविशाल वाङ्मय अपने देश में बन गया। विदेशी आक्रमकों ने तो जो किया सो किया ही, हमारी असावधानी, अज्ञानता और उदासीनता भी इस वाङ्मय को सुरक्षित न रख पाने में कारण बनीं।

पाण्डुलिपियाँ (पोथियाँ ग्रन्थ) किसी भी समाज एवं देश के लिये अमूल्य धरोहर है। क्योंकि वे तपस्वियों के ज्ञान की प्रतीक होती है। अतः उनका निरन्तर स्वाध्यान, पठन–पाठन कलात्मक अभिरुचि व मानसिक एकाग्रता का सूचक होता है। इसके अतिरिक्त उनमें प्रयुक्त होने वाली लेखन सामग्री एवं लिपि व चित्र की विविध शैलियाँ उनकी कलात्मक अभिरूचि तथा विकास की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व प्रदान करती है।

15वीं.–16वीं सदी की पाण्डुलिपियों की प्रशस्तियों को देखकर यह प्रतीत होता है कि समाज के नेताओं एवंकवियों को यह चिंता रहा करती थी कि पिछली सदियों में देश–विदेश के ईर्ष्यालुओं द्वारा जिनवाणी की जो अपूर्व क्षति हुयी है उसे कैसे पूर्ण किया जाय? यही कारण है कि उस समय के भट्टारकगण स्वयंतो साहित्य प्रणयन करते ही रहे लेखकों को आश्रय देकर उन्हें प्रशिक्षित एवं प्रेरित कर उनके द्वारा भी ग्रन्थों का प्रतिलिपि–कार्य कराते रहते थे।

पाण्डुलिपियों का यह दुर्भाग्य है कि समाज के लोग यह नहीं समझतेकि प्राचीनकार्यों की कठोर–साधना एवं परिश्रम से लिखित वे पुरानी पोथियाँ या पाण्डुलिपियाँ ही जैन समाज की असली धरोहर है क्योंकि उनमें हमारे इतिहास एवं संस्कृति तथा आगम–सिद्धान्त आचार तथा

आध्यात्म सभी कुछ वर्णित है। इस प्रकार मेरे शोध द्वारा आदिपुराण नामक पाण्डुलिपियाँ, ग्रन्थ प्रकाश में आया अतः एक विलुप्त होती हुयी पाण्डुलिपि का स्पष्टीकरण समाज के समक्ष प्रस्तुत हुआ। क्योंकि प्राचीन पाण्डुलिपियों की खोज जितनी कठिन है उससे अधिक कठिन है उनका प्रतिलिपि–कार्य और उससे भी कठिन कार्य है उनका अध्ययन, सम्पादन, अनुवाद, एवं तुलनात्मक कार्य। पाण्डुलिपि के अध्ययन करते समय इन सब कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है अतः पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित होगी तो शोध कार्य सहज रूप से होगा तथा अधिक से अधिक पाण्डुलिपि संग्रहीत रहेगी। चित्र सहित पाण्डुलिपियाँ चित्र कृति के कथन को प्रबल बनाती हैं, जिसको पाठक मन की गहराईयों में बैठा लेता है, उक्त पाण्डुलिपि में वर्णित चित्र एक ही विषय के होकर भी अनेक संध्या में विषयवस्तु के महत्व को दर्शाते हैं इन चित्रों की कथा भगवान् आदिनाथ के जीवनचर्या को इंगित करती है। आदिपुराण पाण्डुलिपि बने हुये चित्र *'हे भगवन् ! जैसा तेरा पंथ वही मेरा पंथ को चिरितार्थ करती हैं'* चित्रों का उद्देश्य हमें उक्त उक्ति तक पहुँचाने का है। सार यही है कि हम ऐसे कर्म करें कि जिससे हमें इस संसार में जन्म ही न लेना पड़े अर्थात् भगवान आदिनाथ के बताये पथ पर चलकर हम भी अपना उद्धार करें। इसी प्रशस्त मार्ग को बताने वाली पाण्डुलिपियों की सुरक्षा के लिये कठोर कदम समाज के द्वारा उठाने चाहिये जैसा कि पूर्व में इसी अध्याय में बताया जा चुका है कि काल के दुष्प्रभाव से सहस्त्रों की संख्या में हमारी पाण्डुलिपियाँ पहले ही नष्ट–भ्रष्ट हो गयी कुछ विदेशों में ले जायी गयी अतः उनकी तो अब स्मृति ही शेष रह गयी है। अब विचार यह करना है कि राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, हरियाणा, बुन्देलखण्ड, दिल्ली, आरा, कलकत्ता आदि के शास्त्र भण्डारों में पाण्डुलिपियों की सुरक्षा कैसे हो।

1– अभी तक यह देखा गया है कि जो भी सूचीपत्र तैयार किये गये हैं, उनमें पाण्डुलिपियों के विविरण प्रस्तुत करने की पद्धति में एकरूपता नहीं है, कहीं–कहीं उनका मूल्यांकन भी वैज्ञानिक पद्धति से नहीं हो पाया है। इससे शोधार्थियों को उनका पूरा लाभ नहीं मिल पाता अतः एक निश्चित योजना के अन्तर्गत प्राथमिकता के आधार पर पाण्डुलिपियों का विषय–वर्गीकरण तथा मूल्यांकन कर उनके विधिवत् प्रकाशन की व्यवस्था करायी जाय। साथ ही

पाण्डुलिपियों की सुरक्षा के लिये वर्तमान की अस्त–व्यस्त परिस्थितियों तथा उनके भविष्य में कुछ अनिष्टों की परिकल्पना करते हुये यह अनिवार्य सा हो गया कि समाज अधिक से अधिक जागरूक बने तथा स्वायत्तता एवं एकाधिकारी बने रहने की संकीर्ण मनोवृत्ति ऊपर उठकर जिनवाणी के हित में उसकी ऐसी व्यवस्था करें कि अभी जितनी पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध है उन सभी की माक्रोफिल्मिग कराकर देश के हर प्रमुख शास्त्र भण्डार में उनकी 1–1 प्रति सुरक्षित करा दी जाय जिससे नष्ट या गुम हो जाने की स्थिति में वो आसानी से ग्रन्थालयों में प्राप्त हो सकें।

मध्ययुगीन पाण्डुलिपि लघु चित्रण शैली का स्थान आधुनिक भारतीय कला जगत में लोक कला की भाँति प्रासंगिक है। यह कलाकार की कल्पना शीलता व मौलिकता को बढ़ावा देता है। अतः मेरे दृष्टिकोण के अनुसार अपभ्रंश शैली, लोरे चन्दा आदि से सम्बन्धित पाण्डुलिपि कला आधुनिक स्वरूप लिये हुये है जिनको वर्तमान में आज के युग का कलाकार अपनी रचनाओं में प्रयोग कर रहा है। अपभ्रंश का नामकरण उस समय रायकृष्णदास की देन माना जाता है। परन्तु उस समय की कला को आधुनिक कला के दौरान आज का कलाकार अनेक रूपों में रूपान्तरित कर कला को नये आयाम दे रहा है इन मुख्य कलाकारों में यामिनी राय (1887), मंगल सिंह (1915), के.एस. कुलकर्णी (1916), श्रीनिवास लू (1923), लक्ष्मणपै (1926) आदि कलाकार प्रमुख है। अपभ्रंश चित्र शैली से प्रभावित कलाकारों में श्री यामिनी राय का नाम अग्रिणी है यामिनी राय द्वारा बनाये गये अनेक चित्रों को देखकर स्पष्ट होता है कि उन्होंने मध्य युगीन अपभ्रंश चित्रशैली केकुछ तत्वों का अनुकरण अपने चित्रों में किया है। उदाहरण के लिये अपभ्रंश शैली से प्रेरित एक रेखाचित्र 'नृतक' यह रेखा चित्र प्राथमिक रूप से उनके द्वारा अपनाये गये अपभ्रंश चित्र शैली के प्रभाव को प्रमाणित करता है तथा अन्य चित्रों मेंभी बैठी हुयी आकृति में उभरी हुयी आँख वाली प्रवृत्ति दर्शित हे।जो परले गाल से बाहर की ओर चित्रित है। गुजरात में जन्मे मंगल सिंह भित्ति–चित्रण परम्परा से प्रभावित है। उन्होंने अपभ्रंश और राजस्थानी लघु चित्रों से विषय व चित्रित गुणों को अपने चित्रों में अपनाया अपभ्रंश चित्र शैली के गुण उनके द्वारा बनाये चित्र स्नान व श्रृंगार में स्पष्ट दृष्टव्य है। श्रृंगार नामक चित्र में नारी आकृति को पूरे पृष्ठ पर चित्रित किया

है। इन विशेषताओं के साथ अपभ्रंश चित्र शैली जैसी चेहरे की सीमा रेखा से बाहर निकली आँख का चित्रण भी इस चित्र में दृष्टव्य हे।

श्री निवास लू का 'वीणा–वादिनी' नामक चित्र में आँख व नाम को अत्यधिक लम्बी नुकीली व कोणीय बनाया गया है। जो अपभ्रंश जैन शैली से प्रभावित प्रतीत होती है।

के. एस. कुलकर्णी द्वारा बनवाया गया 'दो बहिनें', 'सहेली' नामक चित्र में अपभ्रंश चित्रशैली के समान दूसरे गाल से बाहर निकली हुयी आँख (परली आँख) बनायी गयी है। दो बहिनें नामक चित्र में अपभ्रंश शैली के समान कोणीय रेखायें शरीरकृति है। एक तरफ आँख का चेहरे की सीमा रेखा से बाहर निकला होना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि ये अपभ्रंश चित्रशैली से प्रभावित है। चित्रों में रंग सपाट व चमकदार है तथा कहीं–कहीं पृष्ठ भूमि को विभाजित करते हुये कार्य भी किया गया है।

लक्ष्मण पै ने चित्रों के विषय, आदर्श व बिम्ब विधान को न अपनाकर उनकी तकनीक व सिद्धान्तों को अपनाया। उनके द्वारा बनाये गये विवाह नामक चित्र में पुरुष की पार्श्व मुखाकृति में कान तक खींची अनुपात से अधिक लम्बी आँख तथा नारी की मुखाकृति में सीमा रेखा से बाहर तक निकली हुयी आँखे अपभ्रंश चित्र शैली से प्रभावित है।

चित्र संख्या :276
दो बहिनें, के.एस. कुलकर्णी

चित्र संख्या :277
नृतक, जामिनी रॉय

चित्र संख्या :278
हम दो, लक्ष्मण पै

चित्र संख्या :279
वीणावादिनी, श्रीनिवास लू

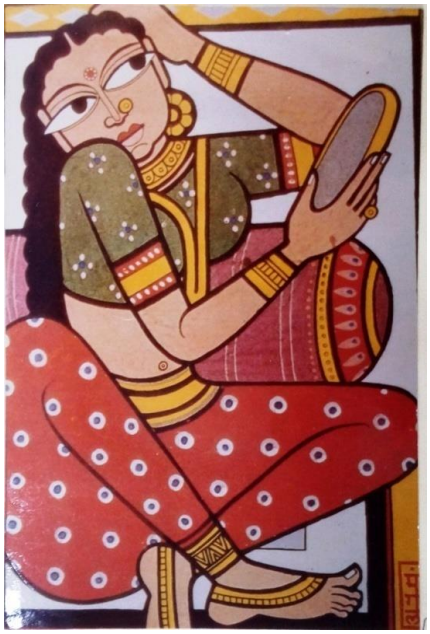

चित्र संख्या :280
श्रृंगार, मंगल सिंह

इस प्रकार आज भारत ही नहीं विश्व के सभी देशों की कला में कला रूपों को अत्यन्त सरल व न्यामितिय रूप प्रदान किया जा रहा है अतः हम निष्कर्ष रूप से यह कह सकते हैं कि अपभ्रंश चित्र शैली का प्रभाव आधुनिक भारतीय चित्रकला को आधुनिक रूप में पोषित करने में पूर्ण सक्षम रहा एवं आगे भी यह कला शैली अपनी आधुनिक कला को अपने कला तत्वों से प्रभावित करती रहेगी।